भारत में आर्थिक नियोजन एवं संघवाद (1950 से वर्तमान तक)

मनीष वशिष्ठ,
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

आर्थिक नियोजन आधुनिक युग की एक नूतन प्रवृत्ति है। 19वीं शताब्दी में पूँजीवाद, व्यक्तिवाद एवं वैयक्तिक स्वतन्त्रता का बोलबाला रहा और अधिकांश राष्ट्र 'उन्मुक्त व्यापार नीति' एवं 'आर्थिक स्वतन्त्रता' के समर्थक रहे। किन्तु पिछली अर्द्ध–शताब्दी में रूसी क्रांति, विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी, दो भीषण महायुद्वो, तकनीकी विकास, नवोदित समाजिक–आर्थिक समस्याओं आदि के कारण राष्ट्रों एवं अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक नियोजन के महत्व को समझा और नियोजित आर्थिक व्यवस्था अपनाने का पुरजोर समर्थन किया। वस्तुतः वर्तमान युग 'नियोजन का युग' है और विश्व में लगभग सभी देश अपने विकास व उन्नति के लिए आर्थिक नियोजन में जुटे हुए हैं।

भारत में कई कारणों से आर्थिक नियोजन की आवश्यकता प्रतीत हुई, जिनमें (क) देश की निर्धनता, (ख) देश के विभाजन से उत्पन्न आर्थिक असन्तुलन, (ग) बेरोजगारी की समस्या, (घ) औद्योगीकरण की आवश्यकता, (च) सामाजिक तथा आर्थिक विषमताएँ, (छ) देश का पिछड़ापन, (ज) धीमी गति से विकास, (झ) विस्फोटक जनसंख्या आदि मुख्य थे। वे सब समस्याएँ चूँकि एक–दूसरे से सम्बन्धित थीं, अतः इनके निवारण व देश में समुचित आर्थिक विकास के लिए ''आर्थिक नियोजन'' को ही एकमात्र वांछनीय विकल्प समझा गया था। पं. जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में ''भारत ही विश्व का एक ऐसा महत्वपूर्ण देश है जिसने सर्वप्रथम लोकतन्त्र तथा व्यक्तिगत स्वाधीनता से युक्त नियोजन के आधार पर अपनी अर्थव्यवस्था के पुनरूद्धार का बीड़ा उठाया है।'' यह एक ऐसी चुनौती तथा ऐसा प्रयोग है कि इसकी सफलता–असफलता पर केवल भारत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण एशिया तथा अफ्रीका में लोकतन्त्र का भविष्य टिका हुआ है। वस्तुतः स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से ही भारत लोकतन्त्रीय नियोजन में संलग्न है तथा इसके परिणामों पर ही भारत के आर्थिक विकास तथा समाजिक एवं भौतिक पुनर्निर्माण के लिए किए जा रहे प्रयासों की सफलता–असफलता निर्भर है।

योजना आयोग या समकक्ष आयोग की आवश्यकता

नियोजित ढंग से विकास करने वाले देशों में एक ऐसी केन्द्रीय सत्ता की आवश्यकता होती है, जो स्वतन्त्र रूप से योजनाओं को बनाये और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए उपयुक्त सुझाव दे। इस योजना तन्त्र का कर्तव्य होता है कि वह विभिन्न विभागों और दक्ष व्यक्तियों की सहायता से विभिन्न समस्याओं का अध्ययन स्पष्ट रूप से करे, आँकड़े इकट्ठे करें तथा उनके आधार पर स्वतन्त्र विचारधाराओं के साथ योजना का निर्माण करे। यह सत्ता केन्द्रीय अथवा किसी भी अन्य शासन सत्ता से स्वतन्त्र रूप में काम करती है। इसके सदस्य आर्थिक विशेषज्ञ, नियोजन वैज्ञानिक आदि होते है। सोवियत संघ में इस प्रकार के योजना तन्त्र को 'गॉस प्लान' कहते है। भारत में इस हेतु पूर्व में 'योजना आयोग' वर्तमान में 'नीति आयोग' तथा 'राष्ट्रीय विकास परिषद्' हैं।

योजना आयोग

15 मार्च, 1950 को केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद के एक प्रस्ताव के अन्तर्गत भारत में एक योजना आयोग की स्थापना की गयी। इसे भारत के **'स्त्रोतों का सर्वाधिक प्रभावशाली तथा सन्तुलित उपयोग करने के लिए'** योजना निर्माण तथा क्रियान्वयन की देखरेख का दायित्व सौंपा गया। सन् 1946 में नियोगी समिति ने सिफारिश की थी कि आर्थिक नियोजन के कार्य की प्रकृति ही ऐसी है कि ''एक ऐसे एकीकृत, शक्तिशाली तथा मन्त्रिपरिषद् के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी संगठन की केन्द्र में स्थापना आवश्यक है जो भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के सम्पूर्ण क्षेत्र पर दत्तचित्त होकर स्थायी रूप से कार्य कर सके।''

योजना आयोग को देश के सर्वांगीण विकास के सन्दर्भ में निम्नलिखित कृत्य सौंपे गये :–

1. देश के भौतिक, पूँजीगत, मानवीय, तकनीकी तथा कर्मचारी वर्ग सम्बन्धी साधनों का अनुमान लगाना और जो साधन राष्ट्रीय आवश्यकता की तुलना में कम दीख पड़े उनकी वृद्धि की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में अनुसन्धान करना,
2. देश के साधनों के अधिकतम प्रभावशाली तथा सन्तुलित उपयोग के लिए योजना बनाना,
3. नियोजन में स्वीकृत कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं के बारे में प्राथमिकताएँ निश्चित करना,
4. आर्थिक विकास की गति को रोकने वाले तत्वों को इंगित करना और योजना की सफलता के लिए स्थापित की जाने वाली अवस्थाओं को निर्धारित करना,
5. योजना का सफल कार्यान्वयन करने के लिए तन्त्र की प्रकृति निश्चित करना,
6. समय–समय पर योजना की प्रगति का मूल्यांकन करना और नीति तथा उपायों में आवश्यक तालमेल की सिफारिश करना, तथा
7. विद्यमान आर्थिक अवस्था, प्रचलित नीतियों, उपायों तथा विकास कार्यक्रमों के विचार–विमर्श के लिए या इसके कर्तव्यों के पालन को सुगम बनाने के लिए आवश्यक सिफारिशें करना, या केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारों द्वारा सुझाव हेतु भेजी गयी समस्याओं की जाँच कर सिफारिश करना।

योजना आयोग एक प्रकार की परामर्शदात्री समिति थी। 15 मार्च,1950 का वह प्रस्ताव, जिनके अन्तर्गत योजना आयोग की स्थापना की गई थी, इस संगठन को मुख्यतः परामर्श सम्बन्धी कार्य ही प्रदान किये गये :– (अ) अपनी सिफारिशों की रचना करते समय योजना आयोग केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के मन्त्रालयों से परामर्श तथा सहयोग करेगा, (ब) आयोग अपनी सिफारिशें मन्त्रिपरिषद् को प्रस्तुत करेगा, तथा (स) इन सिफारिशों पर निर्णय लेना तथा उन्हें क्रियान्वित करना केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों का दायित्व होगा।

योजना आयोग की स्थापना करते समय इस बात पर जोर दिया गया कि उसे सौंपे गए दायित्वों को मद्देनजर रखते हुए यह आवश्यक है कि उसे रोजमर्रा के प्रशासन सम्बन्धी कार्यभार से मुक्त रखा जाये लेकिन नीति निर्धारण के उच्चतम स्तर से वह निरन्तर सम्पर्क बनाए रखे। भारत के प्रधानमन्त्री प्रारम्भ से ही योजना आयोग के अध्यक्ष रहे हैं और नीति सम्बन्धी सभी मुख्य विषयों के सम्बन्ध में भाग लेते रहे हैं और अपने निर्देश देते रहे हैं। आयोग में एक उपाध्यक्ष और कुछ पूर्णकालिक सदस्य थे। आयोग में 9 पूर्णकालिक सदस्य थे। कभी–कभी उपाध्यक्ष योजना मन्त्री भी होता था या योजना तैयार करने के लिए राज्य मन्त्री की सहायता प्राप्त करता था। शुरू से ही वित्तमन्त्री आयोग के सदस्य रहे

हैं। सातवीं पंचवर्षीय योजना तैयार करते समय रक्षा तथा कृषि, सहकारिता और ग्रामीण विकास के केन्द्रीय मन्त्री भी योजना आयोग के सदस्य थे।[1] नीति सम्बन्धी सभी प्रश्नों को आयोग द्वारा तय किया जाता था। ऐसे महत्वपूर्ण मामले हैं–योजना का संविन्यासन, योजना के संशोधन एवं परिवर्तन, योजना की नीतियों से भिन्न नीतियों का अनुगमन, केन्द्रीय मन्त्रालय एवं राज्य सरकार में मतभेद सम्बन्धी महत्वपूर्ण मामले एवं आयोग के सदस्यों में मतभेद।

योजना आयोग का अध्यक्ष प्रधानमन्त्री तथा सचिव मन्त्रिमण्डल का सचिव होने के कारण और इसके सदस्यों में केन्द्रीय सरकार के केबिनेट स्तर के मन्त्रियों के सम्मिलित होने के कारण, परामर्शदात्री संस्था होने पर भी आयोग को भारत में अत्यधिक गरिमा और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। योजना आयोग के अन्य सदस्यों का दर्जा भी मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के बराबर समझा जाता था। मन्त्रिमण्डल की बैठकों में जब कभी योजना आयोग के प्रस्तावों अथवा प्रश्नों पर विचार होता था, तो इन सदस्यों को मन्त्रिमण्डल की बैठक में भाग लेने के लिए बुलाया जाता है। इसी प्रकार जब मन्त्रालय कुछ नये महत्वपूर्ण आर्थिक प्रस्ताव तैयार करते थे तो मन्त्रिमण्डल के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने से पहले इन्हें योजना आयोग में पेश किया जाता था। योजना आयोग के कृत्यों में पिछले कुछ वर्षों में काफी विस्तार हुआ था इस बात का अनुमान इस तथ्य से ही लगाया जा सकता है कि 1951–52 में आयोग के कर्मचारियों की संख्या 244 थी और 1963–64 में यह संख्या बढ़कर 1,131 हो गयी।[2] आर. जे. वैकटेश्वरन ने लिखा है : योजना आयोग सामान्य रूप से आरम्भ हुआ था किन्तु कुछ ही समय में उसने एक विशाल संगठन का रूप धारण कर लिया है।''[3] योजना आयोग में दो (2) समन्वयकारी डिवीजनों (Co-ordinating divisions) 6 सामान्य डिवीजन (General divisions): 10 विषय डिवीजन (Subject divisions) तथा दो अन्य डिवीजन हैं जिनका सम्बन्ध या तो विकास कार्यक्रमों से है या फिर संगठनात्मक कार्यों से। इसके अतिरिक्त इसमें तीन अन्य 'ऐजेन्सियाँ' थीं, जो सम्मिलित संस्थाओं के रूप में कार्य करती थीं। ये हैं– कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन (Programme Evaluation Organisation), रिसर्च प्रोग्राम समिति (Research programme Committee) तथा योजना कार्यों की समिति (Committee on Plan Projects)।[4]

जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं स्वीकार किया था कि योजना आयोग में संगठनात्मक मौलिक परिवर्तन आ गये हैं तथा वह आज एक विशाल संगठन में परिवर्तित हो गया है।[5] जिसे आरम्भ में एक परामर्शदात्री संस्था समझा गया था, वह आकार में एक अन्य सरकार के रूप में परिवर्तित हो गयी थी। इसे एक समानान्तर सरकार (A sort of Parallel Government) की संज्ञा दी जा सकती है। अशोक चन्द्रा ने इसे आर्थिक मन्त्रिमण्डल (Economic Cabinet) का नाम दिया है। उनके शब्दों में, ''आयोग के बढ़ते हुए कृत्यों एवं दायित्वों के कारण उसकी स्थिति आर्थिक मन्त्रिमण्डल की हो गयी है, ऐसा मन्त्रिमण्डल जो न केवल संघ के लिए अपितु राज्यों के लिए भी कार्य करता है''।[6] यही नहीं, उसके केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण भी उसकी शक्ति, अधिकार एवं प्रभाव में वृद्धि हुई है। मन्त्रिमण्डल का सचिव आयोग का सचिव रहा है। शासन के अनेकानेक वरिष्ठ अधिकारी आयोग के कार्यों से विभिन्न स्तरों पर सम्बन्धित थे। राज्य सरकारें तो वित्तीय सहायता और आर्थिक परामर्श हेतु आयोग पर अधिकांशतः निर्भर थी। राज्यों को योजना आयोग की सिफारिशों के आधार पर जितनी राशि प्राप्त होती थी उसकी तुलना में आवंटित कर (संविधान) से प्राप्त होने वाली राशि महत्वहीन बन गयी थी।[7] आयोग ने अपने कार्यों का काफी विस्तार कर लिया था वस्तुतः वह रक्षा को छोड़कर प्रशासन के सभी क्षेत्रों में भावी विकास का प्रमुख निर्णायक बन गया था।[8]

राष्ट्रीय विकास परिषद

भारत का संविधान संघीय प्रकृति का है। इसमें राज्यों को अपने क्षेत्र में पूर्ण अधिकार दिए गए हैं। अतः अखित भारतीय योजनाओं की सफलता के लिए राज्यों का अधिकतम सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। इसे पाने के लिए आयोग योजनाएँ तैयार करते समय राज्यों के सम्बद्ध मन्त्रालयों से और नियोजन विभागों से घनिष्ट सम्पर्क बनाए रखता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council) के माध्यम से राज्यों का सहयोग उच्चतम राजनीतिक स्तर पर प्राप्त किया जाता है।

राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना सन् 1951 में पहली बार इस उद्देश्य से की गई थी कि इससे केन्द्रीय सरकार के मन्त्रालयों तथा राज्य सरकारों द्वारा तैयार की गयी योजनाओं में समन्वय स्थापित किया जा सके। इसी दृष्टि से इसमें प्रधानमन्त्री तथा राज्य सरकारों के मुख्यमन्त्री रखे गये थे। ये प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में योजना आयोग के सदस्यों के साथ मिलकर राष्ट्रीय योजना पर विचार करते थे। जब तक केन्द्रीय तथा राज्य सराकरों में कांग्रेस सत्तारूढ़ बनी रही, तब तक राष्ट्रीय विकास परिषद का कोई विशेष महत्व नहीं था, कुछ थोड़े–से व्यक्तियों को ही इसका ज्ञान था। किन्तु 1967 के चौथे आम चुनावों के बाद केन्द्र में कांग्रेस के सत्तारूढ़ रहने पर भी राज्यों में गैर–कांग्रेसी दल सत्तारूढ़ हुए, इसके परिणामस्वरूप भारतीय संविधान के संघीय स्वरूप की जटिलताएँ स्पष्ट होने लगीं। पहले की भाँति केन्द्रीय सरकार द्वारा किये जाने वाले नियोजन को कार्यान्वित करने में कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई। इनके समाधान की दृष्टि से राष्ट्रीय विकास परिषद् को विशिष्ट महत्व प्राप्त हुआ।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने 1967 में अपने एक अध्ययन दल को राष्ट्रीय विकास परिषद के कार्य की समीक्षा करने और भविष्य में इसे अधिक प्रभावशाली बनाने के उपायों के सम्बन्ध में सुझाव देने को कहा था।इस अध्ययन दल द्वारा दिए गए सुझावों को प्रशासनिक सुधार आयोग ने और बाद में भारत सरकार ने कुछ मामूली संशोधनों के साथ 7 अक्टूबर, 1967 को स्वीकार कर लिया। इन संशोधनों के अनुसार पुनर्गठित राष्ट्रीय विकास परिषद् के सदस्य प्रधानमन्त्री, संघीय केबिनेट के सभी मन्त्री, सब राज्यों और संघीय प्रदेशों के मुख्यमन्त्री और योजना आयोग के सदस्य बनाए गए। इस प्रकार इसकी सदस्यता को पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत और व्यापक बनाया गया, क्योंकि पहले इसमें केवल प्रधानमन्त्री, राज्यों के मुख्यमन्त्री और योजना आयोग के सदस्य ही सम्मिलित होते थे। इसमें केन्द्र द्वारा शासित दिल्ली प्रशासन का प्रतिनिधित्व इसके उपराज्यपाल और प्रमुख कार्यकारी पार्षद द्वारा किया जाता है।

सन् 1967 में राष्ट्रीय विकास परिषद् के कार्यों में संशोधन किया गया। अब इसके संशोधित कार्य निम्नलिखित हैं :– (1) राष्ट्रीय योजना के निर्माण के लिए तथा इसके साधनों के निर्धारण के लिए पथप्रदर्शक (Guideline) सूत्र निश्चित करना, (2) योजना आयोग द्वारा तैयार की गयी राष्ट्रीय योजना पर विचार करना, (3) राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाली सामाजिक तथा आर्थिकनीति के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना, (4) समय–समय पर योजना के कार्य की समीक्षा करना तथा राष्ट्रीय योजना में प्रतिपादित उद्देश्यों तथा कार्य लक्ष्यों की पूति के लिए आवश्यक उपायों की सिफारिश करना।

इन नवीन परिवर्तनों से अब राष्ट्रीय विकास परिषद् का महत्व पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गया है, क्योंकि अब राष्ट्रीय योजना के निर्माण के लिए पथ–प्रदर्शक तत्व (guidelines) परिषद् द्वारा प्रतिपादित और निश्चित किए जाते हैं। इस नवीन व्यवस्था के अनुसार योजना

आयोग अपनी योजना इसके अनुसार ही बनाता था। इस प्रकार अब राष्ट्रीय विकास परिषद् शासन में नीति निर्धारण करने वाली सबसे बड़ी (Topmost) और महत्वपूर्ण संस्था बन गई है।

योजना आयोग की भाँति राष्ट्रीय विकास परिषद के पास कोई सांविधानिक अथवा कानूनी सत्ता नहीं है, किन्तु इसका स्वरूप और संगठन इसे विशिष्ट स्थिति और गरिमा प्रदान करता है। इसकी सिफारिश केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा बड़े सम्मान के साथ स्वीकार की जाती हैं। एच.एम.पटेल के अनुसार, '' राष्ट्रीय विकास परिषद् स्पष्टतः योजना आयोग से उच्च निकाय है, वस्तुतः यह नीति निर्माण करने वाला निकाय है और इसकी सिफारिशें केवल सुझाव मात्र ही नहीं हैं बल्कि वे तो नीति सम्बन्धी निर्णयों के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं मानी जा सकतीं।'' के. संथानाम के अनुसार, '' राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थिति सम्पूर्ण भारतीय संघ के उच्च मन्त्रिमण्डल के समकक्ष–सी है, अर्थात् उसने एक ऐसे मन्त्रिमण्डल का रूप धारण कर लिया है जो भारत सरकार और साथ ही सभी राज्यों की सरकारों के लिए कार्य कर रहा है।''[9]

के. सन्थानाम ने आगे लिखा है कि राज्य सरकारों ने कपड़े, शक्कर और तम्बाकू पर बिक्रीकर लगाने के अपने क्षेत्राधिकार का परित्याग राष्ट्रीय विकास परिषद् बैठक में ही कर दिया, जबकि यह सांविधानिक विषय हैं और संविधान के अनुसार राज्यों के क्षेत्राधिकार में आते है। संघात्मक शासन प्रणाली होने के कारण इस प्रश्न पर राज्य विधानमण्डलों में विचार–विमर्श होना चाहिए था और विधानमण्डलों को ही यह निर्णय लेना चाहिए था कि बिक्रीकर लगाने का अधिकार राज्यों को त्यागना चाहिए अथवा नहीं? राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक में मुख्यमन्त्रियों ने बिना अपने मन्त्रिमण्डल से परामर्श किये ही इतना बड़ा निर्णय कर लिया। क्या संघात्मक शासन व्यवस्था में ऐसा करना समीचीन है?[10]

तत्कालीन केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के भूतपूर्व खाद्यमन्त्री स्व. अजीत प्रसाद जैन ने परिषद् पर स्वच्छन्दतापूर्वक कार्य करने का आरोप लगाया था।[11] उनके अनुसार परिषद ऐसे कार्यों में हस्तक्षेप करती है जो संविधान के अनुसार अन्य निकायों को सौंपे गये हैं, और ऐसे कार्य करने का प्रयत्न करती है जो केन्द्रीय और राज्यस्तरीय मन्त्रिपरिषदों को करने चाहिए। इस प्रकार 1956 में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के खाद्य–मन्त्रालय के परामर्श के बिना ही खाद्य उत्पादन के लक्ष्य यकायक इस परिषद् द्वारा बढ़ा दिए गए थे। इसी प्रकार 1958 में परिषद् ने राज्य व्यापार (State Trading) के सम्बन्ध में बिना इस तथ्य पर विचार किये ही निर्णय ले लिया था कि व्यापार राज्यों के क्षेत्रान्तर्गत आता है एवं राज्य में नियन्त्रण लागू करने की क्षमता या तत्परता है भी या नहीं। श्री जैन की राय में यह परिषद् न तो कानून की दृष्टि से और न अपनी रचना की प्रकृति के कारण राष्ट्रीय मामलों पर निर्णय देने के योग्य या उपयुक्त है, किन्तु निर्णय तो केन्द्र तथा राज्यों के मन्त्रिमण्डलों पर ही छोड़ देने चाहिए।

वस्तुतः राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थिति न तो सांविधानिक ही है और न संविधिक ही है। यह तो केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की सन्तान है। इसकी स्थिति योजना आयोग के मन्त्रणा निकाय जैसी है। इसकी सिफारिशें किसी पर बन्धनकारी नही हैं, फिर भी व्यवहार में यह परिषद् एक उच्च श्रेणी की नीति निर्माता बन गयी है और इसकी सिफारिशें प्रायः स्वीकार कर ली जाती हैं। इसका कारण इसकी सदस्यता की प्रकृति है। यह परिषद् राज्यों तथा केन्द्र के मुख्य निष्पादकों (Chief Executives) की चोटी की सभा कही जा सकती है, और इस कारण यह आश्यर्चजनक नहीं कि इसके निर्णय महत्वपूर्ण होते हैं।'' यदि परिषद् कभी–कभी सर्वोच्च मन्त्रिमण्डल के रूप में कार्य करती है तो इससे उस समय तक कोई हानि नहीं है जब तक कि वह पूर्ण विचार–विमर्श के पश्चात् ही निर्णय करती है।''[12]

सन् 1964 में जवाहरलाल नेहरू के निधन के पश्चात् परिषद् का 'सर्वोच्च मन्त्रिमण्डल' (Super Cabinet) का स्वरूप कम होने लगा और तीव्र गति से परिषद् राज्यों की शिकायतें प्रकट करने का एक वाद–विवाद स्थल बनने लगी। इस बात का आभास 19 व 20 अप्रैल, 1969 को दिल्ली में हुई राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक से मिलता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् के इतिहास में पहली बार कुछ राज्यों ने चौथी योजना के प्रारूप को औपचारिक रूप से अस्वीकृति प्रदान की। पश्चिम बंगाल तथा केरल के मुख्यमन्त्री ने योजना को उसी रूप में स्वीकार करने से इंकार कर दिया। केरल के मुख्यमन्त्री ने कहा कि उन्हें तब बुलाया गया है जबकि योजना का प्रारूप बिल्कुल तैयार था तथा उसमें किसी प्रकार की परिवर्तन की गुंजाइश नहीं थी । राष्ट्रीय विकास परिषद् की 1978 की बैठक में राज्यों के मुख्यमन्त्रियों ने एक स्वर से यह माँग रखी कि राष्ट्रीय आय में से राज्यों को मिलने वाले अंश में भारी वृद्धि होनी चाहिए।

संक्षेप में, परिषद् केन्द्र एवं राज्यों की नीतियों में समन्वय एवं एकीकरण का एक प्रभावी मंच है। लेकिन अब अनेक राज्यों में केन्द्र की सरकार से भिन्न दलों की सरकार होने के कारण हाँ में हाँ मिलाने की प्रवृति नहीं पायी जाती।

नियोजन एवं संघवाद

संविधान निर्माण के समय यह अनुमान नहीं लगाया गया था कि 'आर्थिक नियोजन' संघात्मक संरचना को किस भाँति प्रभावित करेगा ?[13] संविधान निर्मात्री सभा के वाद–विवादों में आर्थिक नियोजन जैसे महत्वपूर्ण विषय पर गम्भीरता से विचार–विमर्श नहीं हुआ।[14] संविधान की समवर्ती सूची में केवल 'सामाजिक और आर्थिक नियोजन' विषय का उल्लेख किया गया है। सन् 1950 में जब नीति आयोग का निर्माण किया गया तो यह इस प्रावधान के अन्तर्गत नहीं किया गया। अब तक भी भारत में नियोजन केवल अनौपचारिक स्तर पर चल रहा है और इसका कोई विधायी आधार नहीं है। यदि कोई राज्य यह तर्क देता है कि योजना आयोग का कोई सांविधानिक आधार नहीं है और वह उसके द्वारा निर्मित योजनाओं को मानने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है तो सैद्धान्तिक दृष्टि से यह बहुत कुछ सही है। सांविधानिक दृष्टि से भारत सरकार के पास ऐसी कोई सत्ता नहीं है कि वह ऐसे राज्य को झुका सके। किन्तु क्या कोई राज्य ऐसा कर पायेगा? के. संथानाम के अनुसार नियोजन व्यवस्था ने नीति और वित्त सम्बन्धी सभी मामलों में राज्यों की स्वायत्तता को एक छाया का रूप प्रदान कर दिया है।[15] अशोक चन्द्रा का मत है कि योजना आयोग ने संघवाद को निरस्त कर दिया है।[16] वस्तुतः नियोजन का संघवाद पर जो प्रभाव पड़ा है उसने केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन दिया है। नियोजन के संघवाद पर प्रभाव को निम्नलिखित शीर्षकों में देखा जा सकता है :–

1. योजना आयोग की केन्द्रीय भूमिका :– भारत में सम्पूर्ण देश– केन्द्र एवं राज्यों के लिए योजना निर्माण का कार्य योजना आयोग (Planning Commission) करता था। यह एक केन्द्रीय अभिकरण था जिसका निर्माण केन्द्रीय सांविधानिक आधार है और न की विधिक आधार। यह तो एक परामर्शदाता निकाय की भाँति कार्य करने वाली संस्था बनायी गयी थी। इसमें प्रधानमन्त्री, कुछ केन्द्रीय मन्त्री तथा विशेषज्ञ होते हैं। इसमें राज्यों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं था। यह पूरे देश के लिए योजना का निर्माण करता था। के.एम.मुंशी के अनुसार ''वास्तव में भारत पर संसद का शासन नहीं है... यथार्थ में भारतीय प्रशासन का अधीक्षण, नियन्त्रण और निर्देशन मनोनीत सर्वोपरि मन्त्रिमण्डल–योजना आयोग करता है जो संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं है।''[17]

2. **नीतियों में एकरूपता :–** संघात्मक सरकार के अन्तर्गत शासन के विषयों को केन्द्र तथा राज्यों क मध्य बाँटा जाता है। राज्यों के क्षेत्राधिकार में आने वाले विषयों पर नीति बनाने में उनको पूरी छूट होती है। प्रत्येक राज्य की परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न होती है, तदनुसार अपनी परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में उन्हें नीति बनाने, प्राथमिकता तय करने और उन्हें बदलने में स्वतन्त्रता होती है। किन्तु योजना अयोग नीतियों की एकरूपता (Uniformity) पर बल देता था। योजना आयोग समूचे देश के लिए यह मानकर योजना बनाता था कि मोटे तौर से सभी राज्यों की परिस्थितियाँ समान हैं। नियोजन का सम्बन्ध शासन के समस्त विषयों से है, चाहे वह विषय संघ सूची का हो अथवा राज्य सूची का। अर्थात् राज्य सूची के विषयो पर भी योजना आयोग एक 'सुपरमैन' बन गया था। के. संथानाम के अनुसार, नियोजन ने केन्द्रीय क्षेत्राधिकार की अपेक्षा व्यवहार में राज्यों के क्षेत्राधिकार को अत्यधिक प्रभावित किया है। उदाहरणार्थ, प्रथम पंचवर्षीय योजना के कुल खर्च का 70 प्रतिशत और द्वितीय पंचवर्षीय योजना के कुल खर्च का 65 प्रतिशत उन मामलों से सम्बन्धित था जिन्हें संविधान ने राज्यों के क्षेत्राधिकार में रखा है (जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, वन, कृषि, सिंचाई, बिजली आदि)।[18] इस प्रकार नियोजन अपने आप में, केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति लिए होती है, अतः योजना आयोग से एकात्मकता की प्रवृत्ति का बढ़ना स्वाभाविक था।

3. **योजनाओं के लिए धन की पूर्ति करना** :– राज्यों की योजनाओं के लिए धन की पूर्ति भी योजना आयोग ही करता था। योजनाओं के अन्तर्गत आर्थिक सहायता की इतनी अधिक मात्रा होती है कि प्रारम्भिक स्तर पर कोई भी राज्य केन्द्रीय वित्तीय सहायता की उपेक्षा नहीं कर सकता। राज्य सरकारों के पास आय के स्त्रोत कम हैं और उनके विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन सम्बन्धी दायित्व इतने अधिक है कि उन्हें केन्द्र की दया पर निर्भर रहना पड़ता है और इसी कारण केन्द्र उनसे मनमानी करवा लेता है।[19] योजनाएँ मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है– प्रथम, राज्य योजनाएँ–इनके लिए केन्द्र कुछ आर्थिक सहायता देता है, द्वित्तीय केन्द्र द्वारा निर्मित एवं अनुदानित योजनाएँ–इनको राज्य सरकारें अपने क्षेत्र में लागू करती है किन्तु अधिकांश व्यय–भार केन्द्रीय सरकार वहन करती है। इसके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार राज्यों को यह निर्देश देती है कि किस परियोजना पर कितना खर्च करना है और राज्यों के लिए उन निर्देशनों का पालन करना आवश्यक होता है।

राज्यों को केन्द्रीय सरकार अनेक प्रकार के अनुदान देती है। इनमें दो प्रकार के अनुदान प्रमुख है–सांविधानिक अनुदान और विवेकाधीन अनुदान। सांविधानिक अनुदान वे है जिनकी वित्त आयोग द्वारा सिफारिश की जाती है और विवेकाधीन अनुदान केन्द्रीय सरकार अपनी इच्छा से देती है। सामान्यतया विवेकाधीन अनुदान 'सांविधानिक अनुदानों' की तुलना में बहुत अधिक होते है। विवेकाधीन अनुदान देते समय केन्द्रीय सरकार राज्यों पर दबाव डालती है कि वे योजनाओं की प्राथमिकताओं पर ध्यान दें। जो राज्य केन्द्रीय सरकार के निर्देशों की तरफ ध्यान नहीं देता उसे विवेकाधीन अनुदान प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

4. **आपूर्ति अनुदान** :– योजना आयोग की सिफारिश पर केन्द्र राज्यों का आपूर्ति अनुदान (Matching grants) प्रदान करता था। उदाहरणार्थ यदि राज्य की योजना में यह प्रावधान होता है कि प्राथमिक विद्यालयों को माध्यमिक विद्यालयों में परिवर्तित करना है तो उसका आधा खर्चा राज्य वहन करेगा और आधे की पूर्ति केन्द्रीय सरकार आपूर्ति अनुदान (Matching grants) के माध्यम से करेगी। सामान्यतया आपूर्ति अनुदान में कुल व्यय का आधा हिस्सा केन्द्रीय अनुदान पाने की लालसा से वे राज्य कार्यक्रम हाथ में ले लेते हैं जो केन्द्रीय सरकार चाहती है। समस्त आपूर्ति

अनुदान केन्द्रीय मन्त्रालयों के माध्यम से दिये जाते हैं। उदाहरणार्थ, शिक्षा से सम्बन्धित अनुदान केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के माध्यम से दिये जाते हैं। इसके फलस्वरूप सभी केन्द्रीय कृषि मन्त्रालयों को अपने से सम्बन्धित राज्य मन्त्रालयों को निर्देशित करने की शक्ति प्राप्त की जाती है। अर्थात् आपूर्ति अनुदान की व्यवस्था ने लम्बरूप 'खड़ी' (Vertical) संघ व्यवस्था की स्थापना की है, जिससे एक ही विषय से सम्बन्धित केन्द्र और राज्यों के विभागों में कार्यक्रम, परियोजना और व्यय सम्बन्धी एक ही इकाई होने का आभास मिलता है। के. सथानाम के शब्दों में ''संविधान ने क्षेत्रीय संघ व्यवस्था (Territorial Federation) की स्थापना की और योजना आयोग के अन्तर्गत लम्बरूप संघ व्यवस्था (Vertical Federation) का चलन हो गया''।[20]

5. **योजना की निर्माण प्रक्रिया में केन्द्रीयकरण :–** पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण इस धारणा के आधार पर किया जाता था कि मानो भारत एक केन्द्रीयकृत एकात्मक राज्य हो। योजना आयोग सम्पूर्ण देश की योजना के लिए कुछ आधारभूत विषय निश्चित करता था। याजना आयोग यह मान कर चलता था कि सम्पूर्ण देश की समस्याएँ एक ही प्रकृति की हैं। जबकि संघात्मक ढाँचे के निर्माण का कारण यह था कि राज्यों की समस्याएँ भौगोलिक पर्यावरण एवं परिस्थितिवश अलग–अलग हो सकती हैं अतः उनके निराकरण हेतु भी अलग–अलग नीतियाँ बननी चाहिए।

योजना आयोग का मुख्य कार्य नीतियाँ निर्धारित करना, लक्ष्य निश्चित करना एवं वित्तीय स्त्रोतों तथा म ुख्य उपक्रमों के विषय में निर्णय लेना था। योजना निर्माण की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार थी, योजना आयोग सर्वप्रथम पंचवर्षीय योजना सम्बन्धी एक संक्षिप्त प्रपत्र तैयार करता था तथा उसे केन्द्रीय सरकार एवं राष्ट्रीय विकास परिषद् के सामने प्रस्तुत करता था। इन दो संस्थाओं द्वारा संक्षिप्त प्रपत्र स्वीकृत हो जाने पर, आयोग योजना का एक प्रारूप तैयार करता था जिसमें प्रस्तावित योजना के मुख्य उद्देश्यों, लक्ष्यों इत्यादि का उल्लेख किया जाता था। इस प्रारूप पर संसद, जनता तथा समाचार पत्र इत्यादि विचार करते था। योजना आयोग राज्यों के प्रारूप पर विस्तृत विचार–विमर्श करता था। राज्य सरकारें प्रारूप में उल्लिखित लक्ष्यों के अनुकूल अपनी–अपनी योजनाएँ तैयार करती थीं। इन योजनाओं में आवश्यक काट–छाँट तथा संशोधन करके योजना आयोग उन्हें एक एकीकृत अंतिम योजना का रूप देता था। संक्षेप में, काफी सीमा तक योजना निर्माण का कार्य आयोग के पास ही केन्द्रित हो गया था।

6. **प्रधानमन्त्री का वर्चस्व** :– सम्पूर्ण देश के लिए योजना का निर्माण करने वाले योजना आयोग की स्थिति प्रधानमंत्री के सचिवालय जैसी (Looks like an agency of the Prime Minister) लगती थी। आयोग के सदस्यों की नियुक्ति प्रधानमंत्री के द्वारा ही होती थी तथा वे प्रधानमंत्री निर्देशन में ही कार्य करते थे। इसीलिए कुछ आलोचकों ने इसे 'समानान्तर मंत्रिमण्डल' (Parallel Cabinet) कहा था। वस्तुतः योजना प्रारूप अन्तिम निर्णय तो केन्द्रीय संसद के हाथों मे है। यथार्थ में केन्द्र की कार्यपालिका वास्तव में निर्णय लेती है और राज्यों की कार्यपालिका उन निर्णयों को कार्यान्वित करती हैं।

7. **राज्य सूची के विषयों पर केन्द्रीय हस्तक्षेप** :– नियोजन का एक परिणाम यह हुआ कि केन्द्र उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य जैसे विषयों पर कानून बनाने लग गया, जबकि ये विषय राज्य सूची में उल्लिखित हैं। राज्य सूची में वर्णित 24,26 तथा 27 संख्या वाले विषयों पर केन्द्र का अधिकार स्थापित हो गया। यही नहीं, रेजर, पत्ती, कागज, गोंद, जूते, माचिस, साबुन आदि विषयों पर भी केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण स्थापित हो गया। आज दैनिक उपयोग की आवश्यक वस्तुएँ जैसे शक्कर, केरोसिन, चावल, वनस्पति आदि भी

नियोजन के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में आ गए हैं।

8. **योजना क्रियान्वयन का अधीक्षण** :– प्रशासकीय दृष्टि से राज्य योजनाओं को लागू करने वाले अभिकरण मात्र समझे जाते है। केन्द्र निर्देश देता है तथा उन निर्देशों की क्रियान्विति को देखने के लिए राज्य में ''विकास आयुक्तों'' की नियुक्ति भी करता है।

9. **राष्ट्रीय विकास परिषद्** :– राष्ट्रीय विकास परिषद् सांविधानिक निकाय नहीं है। यह केन्द्र तथा राज्य दोनों के लिए 'सुपर कैबिनेट' के रूप में कार्य करती है। इसमें केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के प्रमुख मंत्री, प्रधानमंत्री तथा सभी राज्यों के मुख्यमंत्री सम्मिलित होते है। योजना के निर्णय में राष्ट्रीय विकास परिषद् का परामर्श अवश्य लिया जाता है। ऐसी परम्परा विकसित हुई है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् के फैसले न केवल भारत सरकार को मानने होते है बल्कि राज्य सरकारों को भी मानने पड़ते है। राष्ट्रीय विकास परिषद् की एक बैठक में एक महत्वपूर्ण नीति सम्बन्धी निर्णय लिया गया कि राज्य सरकारें सूती कपड़े, शक्कर और तम्बाकू पर बिक्री कर लगाने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को सौंप कर बदले में कुछ अतिरिक्त उत्पादन शुल्क लगाने का अधिकार ग्रहण करेंगी। यह इतना महत्वपूर्ण फैसला था कि के संथानाम को कहना पड़ा कि राष्ट्रीय विकास परिषद् ने समूचे भारतीय संघ की सुपर केबिनेट का दर्जा प्राप्त कर लिया है। वह एक ऐसी कैबिनेट है जो भारत सरकार और सभी राज्यों की सरकारों के लिए काम करती है।[21]

संघवाद एवं नियोजन का सम्मिलन

के. संथानाम के अनुसार आर्थिक विकास के लिए अपनायी गयी नियोजन व्यवस्था के व्यवहार ने भारत के सघीय संविधान को निरस्त कर दिया है, किन्तु यह निरस्तीकरण विधिक या सांविधानिक न होकर सहमति और स्वेच्छा पर आधारित है।[22] के. संथानाम का यह कथन तत्कालीन योजना आयोग के सम्बन्ध में है। हम सब जानते है कि नियोजन एक व्यापक प्रक्रिया है जो केन्द्र एवं राज्यों के कार्यक्षेत्र में आने वाले विषयों को समाविष्ट करती है। यहाँ तक कि अब तो साहित्य, कला और खेलकूद जैसे क्षेत्रों का भी नियोजन किया जा रहा है, नियोजित शैक्षणिक विकास के लिए व्यायामशाला, पुस्तकालय, हॉकी–प्रशिक्षण शिविर आदि का आयोजन किया जाता है।[23]

संघवाद की सफलता के लिए वह आवश्यक माना जाता है कि देश में समृद्धि एवं सम्पन्नता की स्थिति हो। जनता सुखी, सन्तुष्ट और खुशहाल तभी रह सकती है जबकि उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो, वह गरीबी और बेकारी से पीड़ित न हो। वह अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। भारत में आर्थिक समृद्धि के लिए किया जाने वाला कोई भी प्रयास संघवाद विरोधी कैसे हो सकता है? आर्थिक नियोजन आर्थिक स्वाधीनता की ही कल्पना को साकार करने का प्रयास है।

योजनागत विकास के प्रारम्भ होने के समय तीन हिस्सों में बंटवारा व सैकड़ों सालों की गुलामी झेल चुका भारत एक अत्यधिक गरीब देश था जो पूँजी की गम्भीर कमी के कारण तेजी से सामाजिक–आर्थिक विकास प्रारम्भ करने में असमर्थ था। बचत की दर बहुत कम थी जिसके फलस्वरूप कम पूँजी बचती थी जिससे विकास के लिए अनिवार्य पर्याप्त पूँजी निवेश नहीं हो पाता था। उसके बाद से बचत की दर कि 1950–51 में 5.5 प्रतिशत थी, 1985–86 में बढ़कर 22 प्रतिशत हो गई और अब यह वस्तुतः विकासशील देशों की तुलना में सबसे अधिक है।

योजना से कुछ उपलब्धियाँ हुई है। कृषि के क्षेत्र में विकास की सफलता को एक बड़ी सफलता माना जा सकता है। अपनी उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए

अब हम खाद्यान्न के आयात पर निर्भर नहीं करते और उस अवस्था में पहुँच गए हैं जब हमारे पास काफी मात्रा में अतिरिक्त वस्तुएँ है। इनके परिणामस्वरूप हमारा देश ऐसी प्रतिकूल मौसमी परिस्थितियों को सामना करने में सक्षम हो सका है जो कि देश के एक बड़े भाग को प्रभावित करती है। औद्योगिक सतह पर भी उत्पादन बढ़ाने और नयी तकनीक अपनाने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है।

फिर भी केन्द्रीय सरकार अपनी नीतियों के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकारों पर आश्रित हैं ए.एन.झा के शब्दों में योजना का क्रियान्वयन, चाहे वह कानून द्वारा हो गया प्रशासकीय कार्यवाही द्वारा हो, राज्यों के हाथों में है। योजना आयोग की तुलना में राष्ट्रीय विकास परिषद् नीति निर्माता निकाय के रूप में अधिक शक्तिशाली थी। राष्ट्रीय विकास परिषद् में राज्यों के मुख्य मंत्रियों को स्थान दिया गया है ये परिषद् की कार्यवाहियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अन्ततोगत्वा योजनाओं की स्वीकृति राष्ट्रीय विकास परिषद् के द्वारा होती है, अतः यह कहना उचित नहीं प्रतीत होता कि आर्थिक नियोजन से भारत में संघ व्यवस्था समाप्त हो गई है। प्रो. जे. डी. सेठी ने सम्पूर्ण योजना ढाँचे पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–''भारत में नियोजन के सम्बन्ध में निर्णय लेने की सत्ता अनेक निकायों मे निहित है। योजना आयोग के अतिरिक्त राष्ट्रीय विकास परिषद्, संसद, मंत्रिमण्डल, इत्यादि को कहीं न कहीं योजनाओं के निर्माण में निर्णय लेना ही पड़ता है। योजनाओं के क्रियान्वयन मे वित्त मंत्रालय, योजना आयोग, प्रधानमंत्री सचिवालय के साथ–साथ राज्य सरकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।''[24] वर्तमान में योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग क्रियाशील है।

नियोजन ने चाहे संघवाद का अन्त न किया हो तब भी केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन तो दिया ही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि संघवाद तथा योजना दोनों को साथ–साथ चलाया जाए। क्या योजना सम्बन्धी निर्णयों को विकेन्द्रित नहीं किया जा सकता है? वस्तुतः राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता की मात्रा को कम किया जाना चाहिए तथा राज्यों के आय के स्त्रोतों को बढ़ाया जाना चाहिए। यदि राज्यों की आमदनी के स्त्रोत बढ़ जायेंगे तो राज्यों को थोड़े से ही अनुदान की आवश्यकता पड़ेगी। इससे निश्चित ही राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता कम होगी और वे अपने सांविधानिक कार्यो का स्वायत्तापूर्वक निष्पादन कर सकेंगे।

पिछली चार दशाब्दियों में भारत में योजना निर्माण के लिए योजना आयोग के एक बड़े जटिल और विशाल संगठन का निर्माण हुआ है। इसक मूल कारण यहाँ की विशिष्ट राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ रही है। राजनीतिक दृष्टि से भारत की योजनाओं की सबसे बड़ी विशेषता इसका लोकतन्त्रीय स्वरूप है। इस दृष्टि से ये समष्टिवादी या साम्यवादी देशों मे केन्द्रीय सरकार द्वारा ऊपर से जनता पर थोपी जाने वाली योजनाओं से सर्वथा भिन्न है। इसके अतिरिक्त योजनाएँ बनाते समय राज्यों से पूरा सहयोग लिया जाता है ताकि उनकी स्वतन्त्रता को कोई आँच न आने पाए। राष्ट्रीय विकास परिषद् का संगठन इसी उद्देश्य से किया गया है।

सरकारिया आयोग ने योजना आयोग की भूमिका की आलोचना करते हुए कहा है कि यह तो केन्द्रीय सरकार के अंग के रूप में राज्यों पर नियंत्रण स्थपित करने का उपकरण मात्र बनकर रह गया है। यद्यपि सरकारिया आयोग इस बात के पक्ष में नही है कि योजना आयोग को स्वायत्त संस्था बना दिया जाये। उसका सुझाव है कि आयोग का उपाध्यक्ष ख्याति–प्राप्त विशेषज्ञ हो, जो वस्तुनिष्ठता और प्रसिद्धि से केन्द्र के साथ ही राज्य सरकारों का भी विश्वास प्राप्त कर सके। राज्य स्तर पर योजना बोर्ड गठित किए जाने

चाहिए जिससे राज्य राष्ट्रीय योजना के निर्माण में बेहतर ढंग से अपना योगदान दे सकेंगे।[2]

सहकारी संघवाद को बढ़ावा देने व सुधारात्मक उपचार के रूप में

नीति आयोग

नीति आयोग 1 जनवरी 2015 को योजना आयोग के स्थान पर भारत की राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार ने नीति आयोग का गठन किया। नीति आयोग मे सहकारी संघवाद की भावना को केन्द्र में रखते हुये अधिकतम शासन, न्यूनतम सरकार के दृष्टिकोण को परिकल्पना को स्थान दिया गया।

65 वर्ष पुराना योजना आयोग कमांड अर्थव्यवस्था संरचना में बीत हुये कुछ वर्षो में प्रभावी नहीं रह गया था। भारत विविधताओं वाला देश है और इसके राज्य आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों में है। जिनकी अपनी भिन्न–भिन्न ताकतें व कमजोरियाँ हैं। आर्थिक नियोजन के लिये सभी पर एक प्रारूप लागू हो, यह धारणा गलत है। यह आज की वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत को प्रतिस्पर्द्धी के तौर पर स्थापित नही कर सकता। इन्हीं विचारों के साथ नीति आयोग का जन्म हुआ।

नीति आयोग की संरचना

अध्यक्ष :– प्रधानमंत्री, **उपाध्यक्ष** : प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त, संचालन परिषद् सभी राज्यों के मुख्यमंत्री और केन्द्र शासित प्रदेशों के उप राज्यपाल।

क्षेत्रीय परिषद् :– विशिष्ट क्षेत्रीय मुद्दों को संबोधित करने के लिये प्रधानमंत्री या उसके द्वारा नामित व्यक्ति मुख्यमंत्रियों और उपराज्यपालों की बैठक की अध्यक्षता करता है।

तदर्थ सदस्यता :– अग्रणी अनुसंधान संस्थानों से बारी–बारी से पदेन सदस्य।

पदेन सदस्यता :– प्रधानमंत्री द्वारा नामित केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् के अधिकतम चार सदस्य।

CEO :– भारत सरकार का सचिव जिसे प्रधानमंत्री द्वारा एक निश्चित कार्यकाल के लिये नियुक्त किया जाता है।

विशेष आमंत्रित :– प्रधानमंत्री द्वारा नामित विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ।

नीति आयोग के दो प्रमुख हब

टीम इंडिया हब :– राज्यों और केन्द्र के बीच इंटरफेस का काम करता है।

ज्ञान और न्वोन्मेष हब :– नीति आयोग के थिंक टैंक की भांति कार्य करता है।

नीति आयोग

1. यह एक सलाहकार थिंक टैंक के रूप में कार्य करता है।
2. यह सदस्यों की व्यापक विशेषज्ञता पर बल देता है।
3. यह सहकारी संघवाद की भावना पर कार्य करता है क्योंकि यह राज्यों की समान भागीदारी सुनिश्चित करता है।
4. प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त सचिवों कों CEO के रूप में जाना जाता है।
5. यह Bottom up Approach पर कार्य करता है।
6. इसे नीतियाँ लागू करने का अधिकार नहीं है।
7. इसे धन आवंटित करने की शक्तियाँ नहीं हैं जो वित्त मंत्री में निहित हैं।

योजना आयोग

1. इसमें एक संवैधानिक निकाय के रूप में कार्य किया था, जबकि इसे ऐसा दर्जा नहीं मिला।
2. यह सीमित विशेषज्ञता पर निर्भर था।
3. राज्यों की भागीदारी बहुत कम रहती थी।
4. सचिवों को सामान्य प्रक्रिया के माध्यम से नियुक्त किया जाता था।
5. यह Top down Approach पर कार्य करता था।
6. यह राज्यों के लिये नीतियां बनाता था और स्वीकृत परियोजनाओं के लिये धन आवंटित करता था।
7. इसे मंत्रालयों और राज्य सरकारों को धन आवंटित करने की शक्तियाँ प्राप्त थीं।

नीति आयोग में योजनाओं का विकेन्द्रीकरण है, परम्परागत नौकरशाही के स्थान पर विशेषज्ञता और प्रदर्शन के आधार पर जिम्मेदारियाँ तय करना। नीति आयोग, समय के साथ परिवर्तन के एक एजेंट के रूप में उभर सकता है और सार्वजानिक सेवाओं की बेहतर डिलीवरी करने तथा उसमें सुधार के एजेन्डे में योगदान दे सकता है।

नीति आयोग में देश में कुशल, पारदर्शी, नवीन और जवाबदेह शासन प्रणाली का प्रतिनिधि बनने की क्षमता है।

योजना आयोग की तुलना में नीति आयोग को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिये इसे बजटीय प्रावधानों में स्वतंत्रता होनी चाहिये और यह योजना तथा गैर योजना के रूप में नही बल्कि राजस्व और पूँजीगत व्यय की स्वतंत्रता के रूप में होनी चाहिए इस पूँजीगत व्यय की वृद्धि से अर्थव्यवस्था में सभी स्तरों पर बुनियादी ढॉचे का घाटा हो सकता है। नीति आयोग के पहले उपाध्यक्ष अरविन्द पनगढ़िया थे तथा वर्तमान में राजीव कुमार इसके उपाध्यक्ष है और अमिताभ कांत C.E.O है।[26]

नीति आयोग की पाँचवी बैठक 15 जून 2019 को माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी की अध्यक्षता में आयोजित हुई। इसमें पदेन सदस्यों के रूप में केन्द्रीय मंत्रियों और विशेष आमंत्रितों के अलावा जम्मू–कश्मीर के राज्यपाल, 26 मुख्यमंत्रियों तथा अंड़मान निकोबार द्वीप समूह के उप राज्यपाल ने भाग लिया।

प्रधानमंत्री ने सहयोगपूर्ण संघवाद को प्रेक्षित करने के लिये नीति आयोग की शासी परिषद के महत्व पर प्रकाश डाला। जिसमें सामूहिक रूप से गरीबी, बेरोजगारी, सूखा, प्रदूषण अल्प विकसित क्षेत्रों और भारत की प्रगति में बाधा डालने वाले सभी कारकों का मुकाबला करने की आवश्यकता पर बलदिया। उन्होंनें इस बात पर जोर दिया कि लक्ष्य इस महान देश की सम्भावनाओं का भरपूर उपयोग करने, 2022 तक न्यू इंडिया बनाने और 2024 तक पाँच मिलियन अमरिकी डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाने का है।

प्रधानमंत्री ने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक राज्य को अपनी निर्यात संभावनाओं का मूल्यांकन करके निर्यात और रोजगार बढ़ाने के लिये आवश्यक कारकों का निर्धारण कर देश की जी डी पी में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाने पर ध्यान देने की आवश्यकता है।[27]

वास्तव में भारत जैसे विशाल जनसंख्या, विविधता तथा विविधता तथा विभिन्न राज्यों वाले देश में सुनियोजित, समावेशी व सहकारी योजनागत विकास एक प्राथमिक आवश्यकता है जिसमें केन्द्र व राज्य अपनी साझा भूमिका से प्रगति तथा आमजन में खुशहाली के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

सन्दर्भ सूची

राष्ट्रीय मोर्चा सरकार द्वारा गठित योजना आयोग का संगठन निम्नवत् था :

वी.पी. सिंह (प्रधानमंत्री)
अध्यक्ष

रामकृष्ण हेगड
उपाध्यक्ष

डॉ. जे. डी. सेठी, डॉ. रजनी कोठारी, डॉ. एल.सी. जैन, सदस्य

श्रीमति इला भट्ट, डॉ. अरूण घोष, डॉ. ए. वैद्यनाथन, रहमतुल्लाह सदस्य

अंसारी, डॉ. हस्स्वरूप सिंह, टी.एन. शेषन।

1- एच. के. परांजपे, **दि प्लानिंग कमीशन**, पृ. 139–40.

2- आर. जे. वैंकटेश्वरन, **केबिनेट गवर्नमेण्ट इन इण्डिया,** पृ. 112.

3- एच. के. परांजपे, **उपर्युक्त**, पृ. 112.

4- एच. के. परांजपे, **जवाहरलाल नेहरू एण्ड दि प्लानिंग कमीशन**, पृ. 8.

5- अशोक चन्द्रा, **इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन**, (लंदन, 1967), पृ. 96.

6- एन.एन.झा, ''प्लानिंग, दि फेडरल प्रिंसिपल एण्ड दि पालियामेण्ट्री डेमोक्रेसी'' **''दि इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'',** अप्रैल–जून, 1965, पृ.164.

7- अशोक चन्दा, **फेडरलिज्म इन इण्डिया** (लंदन, 1968), पृ. 195.

8- के. संथानाम, **यूनियन–स्टेट रिलेशन्स इन इण्डिया** (बम्बई, 1963), पृ. 47.

9- **उपर्युक्त**, पृ. 46–47.

10- **टाइम्स ऑफ इण्डिया,** 6 मई, 1959.

11- **उपर्युक्त**, 3 नवम्बर, 1959.

12- ग्रेनविल आस्टिन, **दि इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन** (ऑक्सफोर्ड, 1974), पृ. 236.

13- के. संथानाम, **यूनियन–स्टेट रिलेशन्स इन इण्डिया** (बम्बई, 1963), पृ. 44.

14- **उपर्युक्त,** पृ. 56.

15- अशोक चन्दा, **फेडरालिज्म इन इण्डिया** (लंदन, 1968), पृ. 196.

16- के.एम.मुंशी, ''दि सुपर केबिनेट'' **दि रेडिकल हूमानिस्ट**, XXIII, दिसम्बर 6, 1959, पृ. 571.

17- के. संथानाम, **उपर्युक्त**, पृ. 45.

18- इकबाल नारायण, **ट्वाइलाइट और डान** (आगरा, 1972), पृ. 110.

19- के. संथानाम, **उपर्युक्त**, पृ. 54.

20- **उपर्युक्त**, पृ. 47.

21- **उपर्युक्त**।

22- एच. के. परांजपे, **दि रिआर्गेनाइजु प्लानिंग कमीशन** (नई दिल्ली, 1970), पृ. 57.

23- जे.डी.सेठी, **इण्डिया इन काइसिस** (नई दिल्ली, 1975), पृ. 155.

24- **केन्द्र–राज्य आयोग रिपोर्ट**, भाग I (1988), पृ. 365.

25- **राजनीति विज्ञान :** एक समग्र अध्ययन, राजेश मिश्रा (2019) पृ. 636